रासो काव्य परम्परा

आदिकाल में रचित साहित्य में रासो-काव्य ग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। रासो काव्य परम्परा के अन्तर्गत वे ग्रन्थ हैं, जिन्हें वास्तविक रूप से आदिकालीन हिन्दी रासो काव्य परम्परा में स्थान दिया जा सकता है। चारण कवियों द्वारा रचित वीरगाथा काव्य इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। हिन्दी रासो काव्य परम्परा के अन्तर्गत आनेवाले इन ग्रन्थों की सूची निम्नवत् है:-

- बीसलदेव रासो – नरपति नाल्ह
- विजयपाल रासो – नल्ल सिंह
- पृथ्वीराज रासो – चन्दबरदाई
- परमाल रासो – जगनिक
- हम्मीर रासो – शार्ङ्गधर
- खुमान रासो – दलपति विजय

ऐतिहासिक रासो काव्य परम्परा के कवि प्रायः राज्याश्रित थे जिनका उद्देश्य अपने आश्रयदाता के शौर्य एवं ऐश्वर्य की अतिशयोक्ति-पूर्ण प्रशंसा करना था। यद्यपि इन ग्रन्थों में ऐतिहासिक व्यक्तियों का उल्लेख है, परन्तु ऐतिहासिक तथ्यों का अभाव एवं कल्पना की प्रचुरता है। इन रचनाओं में पात्रों का जो चरित्रांकन किया गया है तथा उनके क्रियाकलापों का जो वर्णन किया गया है उससे हमें सामंती जीवन की पूरी झलक मिलती है। वीर एवं शृंगार रस की अभिव्यक्ति इन रासो ग्रंथों में प्रधान रूप से हुई है। कलापक्ष की दृष्टि से इस परम्परा के कवियों में अलंकार मोह एवं विविध छन्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति परिलक्षित होती है। पुरानी राजस्थानी

एवं अपभ्रंश मिश्रित ब्रजभाषा अर्थात् पिंगल का प्रयोग भी रासो काव्य ग्रंथों में हुआ है। वीर रस की सहज अभिव्यक्ति एवं मध्यकालीन सामंतवादी जीवन के यथार्थ चित्रण की दृष्टि से रासो काव्य परम्परा के ग्रन्थ महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं। इस काव्य परम्परा के प्रमुख ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है-

- बीसलदेव रासो → 'बीसलदेव रासो' मुक्तक परम्परा का प्रतिनिधि काव्य है। आदिकाल के गेय साहित्य में इसकी चर्चा महत्वपूर्ण रूप से की जाती है। बीसलदेव रासो के रचयिता 'नरपति नाल्ह' ने इस ग्रन्थ की रचना सं. 1212 वि० में की थी। इस ग्रन्थ के चरितनायक विग्रहराज चतुर्थ एक ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, किन्तु अन्य रासो काव्यों की भाँति इसमें भी अनेक ऐतिहासिक भ्रांतियाँ हैं जो यह प्रमाणित करती हैं कि इस ग्रन्थ में तथ्यकम है और कल्पना अधिक है। बीसलदेव रासो की रचना यद्यपि आदिकाल में हुई है तथापि अन्य रासो काव्यों की भाँति यह वीरगाथात्मक कृति न होकर एक विरह काव्य है जिसका मूल रूप वस्तुतः 'गेय काव्य' का था। गेय काव्य होने के कारण ही इसका स्वरूप परिवर्तित होता रहा।

'बीसलदेव रासो' वस्तुतः प्रेमाख्यानक काव्यपरंपरा की कोटि में आता है, जिसे चार खण्डों में विभक्त किया गया है। प्रथम खण्ड में अजमेर के राजा विग्रहराज चतुर्थ (बीसलदेव) का परमारवंशी राजा भोज की कन्या राजमती से विवाह दिखाया गया है। द्वितीय खण्ड में रानी के व्यंग्य से रूष्ट राजा के उड़ीसा चले जाने की कथा है। बारह वर्ष तक बीसलदेव उड़ीसा में रहता है और

उसके विरह में रानी राजमती अत्यधिक वेदना का अनुभव करती है। रानी का यह विरह वृत्तांत तृतीय खण्ड में वर्णित किया गया है। चतुर्थ खण्ड में इन दोनों के पुनर्मिलन का वृत्तांत है।

- परमाल रासो → परमाल रासो का रचयिता कवि जगनिक था जिसे चंदेल वंशी राजा परमालदेव का दरबारी कवि माना जाता है। आल्हा और ऊदल नामक दो क्षत्रिय सामंतों की वीरता का वर्णन परमाल रासो के अन्तर्गत प्रमुख रूप से किया गया है। उत्तरप्रदेश में इसे 'आल्हा' या 'आल्हखण्ड' के नाम से जाना जाता है तथा यह अपनी गेयता के कारण अबतक लोक-काव्य के रूप में समादृत है। आ० रामचन्द्र शुक्ल का मत है कि "जगनिक के काव्य का आज कहीं पता नहीं है, पर उसके आधार पर प्रचलित गीत, हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों के गाँव-गाँव में सुनाई पड़ते हैं।---यह गूँज मात्र है मूल शब्द नहीं।" आ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी इस ग्रन्थ को अर्द्धप्रामाणिक ही स्वीकार करते हुए अपना मत निम्न शब्दों में व्यक्त किया है- "जगनिक के मूल काव्य का क्या रूप था, यह कहना कठिन हो गया है। अनुमानतः इस संग्रह का वीरत्वपूर्ण स्वर तो सुरक्षित है, लेकिन भाषा और कथानकों में बहुत अधिक परिवर्तन हो गया है। इसलिए चंदबरदाई के पृथ्वीराज रासो की तरह इस ग्रन्थ को भी अर्द्धप्रामाणिक कह सकते हैं।"

परमाल रासो का रचनाकाल 13वीं शताब्दी के प्रारम्भ में माना गया है। वीर भावना का जितना प्रौढ़ रूप इस ग्रन्थ में मिलता है, वैसा

अन्यत्र दुर्लभ है। आज भी वर्षाकाल में उत्तर प्रदेश के गाँव-गाँव में आल्हा के स्वर सुने जा सकते हैं जो श्रोताओं के हृदय में वीर रस का संचार कर देते हैं।

- पृथ्वीराज रासो → 'पृथ्वीराज रासो' चन्दबरदाई कृत हिन्दी साहित्य का आदि महाकाव्य है, जिसमें मानव चेतना की अनुभूति की सुंदर अभिव्यक्ति मिलती है। यही कारण है कि इस ग्रन्थ में कला के दोनो पक्षों - भावपक्ष एवं कलापक्ष का सुंदर वर्णन मिलता है। भावपक्ष के माध्यम से विचार करने पर प्रतीत होता है कि कोई भी काव्य भावप्रधानता के कारण प्रेम और सौंदर्य का चित्रण करता है। सर्वश्रेष्ठ काव्य में प्रेम और सौन्दर्य का सामंजस्य होता है। 'पृथ्वीराज रासो' के लिए भी यही सत्य है। इसमें प्रेम और सौन्दर्य के उद्बोधन के लिए नवरसों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। 'पृथ्वीराज रासो' में भारत के हिंदू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान के वीरतापूर्ण आदर्श एवं दर्प की कथा 69 समयों में वर्णित है। इसमें उनके जन्म से मृत्युपर्यंत संघर्ष एवं युद्ध की कहानी है। अतः, यह मूलतः वीररसप्रधान काव्य है और इसमें तत्कालीन आदर्श वीरत्व का सुंदर चित्रण है। वीररस के साथ ही शृंगार के दोनों रूपों (संयोग और वियोग) का भी वर्णन है। कलापक्ष के रूप में विचार करने पर अलंकारों का स्थान सर्वप्रथम आता है। 'पृथ्वीराज रासो' में अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग मिलता है। इसमें प्रयुक्त अलंकार भावसौन्दर्य एवं अभिव्यक्तिकौशल का प्रतिनिधित्व करते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' में छन्दों का प्रयोग सशक्त रूप में हुआ है। 72 प्रकार के छन्दों का प्रयोग सफलतापूर्वक देखा जा सकता है। डॉ. नामवर सिंह ने इस ग्रंथ के

छंदों के विषय में लिखा है - "वस्तुतः हिन्दी में चंद को छंदों का राजा कहा जा सकता है। भावभंगिमा के साथ-साथ दनादन भाषा नए-नए छंदों की गति धारण करती चलती है और विशेषता यह है कि बलखाती हुई नदी में बहते हुए जलराशि की तरह आत्मविस्मृति का ऐसा सुख अन्यत्र कहीं नहीं मिलता।"

- खुमानरासो → 'खुमानरासो' के रचयिता दलपति विजय नामक कवि हैं। इस ग्रन्थ का चरित नायक मेवाड़ का राजा खुमान द्वितीय है। अन्य रासो काव्य ग्रन्थों की भाँति इसका रचनाकाल भी संदिग्ध है, क्योंकि आ० रामचन्द्र शुक्ल इसे 9वीं शताब्दी की रचना मानते हैं तो राजस्थान के वृत्त संग्राहकों ने इसे 17वीं शती की रचना बताया है। आ० शुक्ल का मत ही अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि इसमें आदिकालीन हिन्दी का स्वरूप सुरक्षित है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिक हस्त-लिखित प्रति पूना-संग्रहालय में उपलब्ध है। ग्रन्थ की रचना लगभग 5000 छन्दों में की गई है। वस्तु वर्णनों के अंतर्गत नायिका भेद एवं षड्ऋतु वर्णन का समावेश भी किया गया है।

आदिकाल के रासो साहित्य के उल्लेखनीय ग्रंथ यही चार हैं। प्राकृत पैंगलम में हम्मीर रासो के कुछ छन्द मिले थे जिनके आधार पर आचार्य शुक्ल ने हम्मीर रासो के अस्तित्व को स्वीकार किया था, किंतु अभी तक यह ग्रन्थ अप्राप्य है। विजयपाल रासो वस्तुतः अपभ्रंश भाषा में रचित है, अतः उसे हिन्दी रासो काव्य परम्परा में स्थान देना उचित नहीं है। आदिकालीन रासो साहित्य की प्रामाणिकता पर भले ही प्रश्नचिन्ह लगाए जाएं, किन्तु इन काव्य ग्रंथों के काव्य सौष्ठव पर कोई उंगली नहीं उठा सकता।